

Vol. 12 September '18 No. 2
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण **BRAHMARPAN**

वेदोऽखिलो
धर्ममूलम्

A Monthly publication of
Brahmasha India Vedic
Research Foundation



Brahmasha India Vedic Research Foundation

ब्रह्मशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

C2A/58 Janakpuri, New Delhi - 110058

रथवान चलाओ रथ अपना

-देव नारायण भारद्वाज

रथवान चलाओ रथ अपना
मत रहो देखते तुम सपना।
रथवान चलाओ रथ अपना॥

शुभ सुन्दर शरीर रथ पाया।
यह अतिशय तुमको मन भाया।
सर्वत्र सदा गतिशील रहे,
फिर भी क्यों तुमने ठहराया।
करो पूर्ण संकल्प-सर्जना।
रथवान चलाओ रथ अपना॥

क्यों आँख मूढ़ कर बैठ रहे।
तन तरुणाई पर ऐंठ रहे।
क्यों हुआ भ्रमित गन्तव्य तुम्हें,
कर इधर-उधर घुसपैठ रहे।

तुम्हें लक्ष्य प्रत्यक्ष पकड़ना।
रथवान चलाओ रथ अपना॥
यह चक्र बिना ही रथ चलता।
ऊँची उड़ान भी यह उड़ता।
ईश-दण्ड जो थाम चलाता,
वही मगन सुख धाम पहुँचता।
फिर उसे कहाँ थकना-रुकना।
रथवान चलाओ रथ अपना॥

एम.आई.जी भूखण्ड-45,

अवन्तिका कालोनी

ए.डी.ए. राजघाट मार्ग

अलीगढ़ (उ.प्र.)

दूरभाष-0571-2742061

SHRI AUROBINDO ON VEDAS

- * वेद वह ज्ञान है जिसे पाने के लिए मानव का समस्त चिन्तन-मनन प्रयत्नशील है- यस्मिन् विज्ञाते सर्वम् विज्ञातम्॥ जिसे जानने से सब कुछ जाना जाता है।
- * मेरा विश्वास है कि वेद सनातन धर्म की आधारशिला है। हिन्दू तत्त्व में अन्तर्निहित दिव्यता है। इस पर पड़े पर्दे को हटाना होगा। यवनिका को उठाना होगा।
- * मेरा विश्वास है कि वेद ज्ञेय है और अनुसन्धेय है।
- * मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष और विश्व का भविष्य वेद के अन्वेषण और प्रयोग पर अवलम्बित है।



**BRAHMASHA INDIA VEDIC
RESEARCH FOUNDATION**

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058

Tel :- 25525128, 9313749812

email: deekhal@yahoo.co.uk

brahmasha@gmail.com

Website : www.thearyasamaj.org

of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul

Secretary

Dr. B.B. Vidyalkar 0124-4948597

President

Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)

V.President

Dr. Mahendra Gupta V.President

Ms. Deepti Malhotra

Treasurer

Editorial Board

Dr. Bharat Bhushan Vidyalkar,
Editor

Dr. Harish Chandra

Dr. Mahendra Gupta

Shri Shiv Kumar Madan

लेख में प्रकट किए विचारों के
लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं
है। किसी भी विवाद की
परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली
ही होगा।

Printed & Published by

B.D. Ukhul for Brahmasha India
Vedic Research Foundation
Under D.C.P.

License No. F2 (B-39) Press/
2007

R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062

Price : Rs. 10.00 per copy

Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan September'18 Vol. 12 No.2

भाद्रपद-आश्विन 2075 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण

BRAHMAPAN

A bilingual Publication of Brahmasha
India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. रथवान चलाओ रथ अपना 2
-देव नारायण भारद्वाज
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 8
-डॉ. भारत भूषण
4. डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी 9
-महात्मा चैतन्य मुनि
5. संस्कृत भारतीय भाषाओं की गंगा 13
-स्व. राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा
6. बलिदान पथ के पथिक पं. लेखराम 15
-प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु
7. बलिदान चन्द्रशेखर आजाद 19
-दिव्या आर्य
8. अटल बिहारी वाजपेयी-एक नज़र 21
9. बोलो वन्दे मातरम् 23
10. मूर्तिपूजा का व्यापार 25
-महेन्द्र आर्य
11. श्री एपीजे अब्दुल कलाम के भाषण के अंश 27
12. ईश्वर के नाम पर हो रहे पाखंड व अंधविश्वास से बच सकते हैं 30
-आर.डी.अग्रवाल 'प्रेमी'
13. Distortion of Bharatiya History 32
-Dr. Bhagad Datta
14. Sanskrit : A Powerful Binding Force 34
-Dr. Satyamurti

संपादकीय

भारतीय संस्कृति का पावन पर्व श्रावणी

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

भारतीय संस्कृति का पावन पर्व श्रावणी आध्यात्मिक चिन्तन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे एक मास पूर्व आषाढ़ पूर्णिमा पर गुरु-पूर्णिमा या व्यास पूर्णिमा का आयोजन होता है। इसी-दिन वेद-व्यास का जन्म हुआ था। जिन्होंने महाभारत और अष्टादह पुराणों का प्रणयन किया था। इनकी विद्वत्ता के कारण भविष्य में 'व्यास' ने पदवी का रूप धारण कर लिया।

प्राचीन काल में चतुर्मास्य में वर्षा के कारण ऋषि-मुनि और साधु-महात्मा अपने आश्रमों से नगरों में आकर जन सामान्य को वेदों के गूढ़ विषयों का उपदेश करते थे। स्वाध्याय का आर्यों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। यह समाज के चारों आश्रमों के जीवन का आवश्यक अंग था। यहाँ तक कि संन्यासियों के लिए सब कार्यों के त्याग का विधान है परन्तु उन्हें भी स्वाध्याय से अवकाश नहीं है, कहा भी है "सन्यसेत् सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्" अर्थात् संन्यासी को सब कर्मों से छूट है परन्तु उन्हें भी वेदों और शास्त्रों के अध्ययन से छूट नहीं है। इसी कारण से आर्यसमाजों में प्रतिवर्ष श्रावणी से कृष्ण जन्माष्टमी तक विद्वानों और महात्माओं के प्रवचन होते हैं।

श्रावणी पर प्राचीन काल में गुरुकुलों में शिक्षा का नया सत्र आरंभ होता था। जब माता-पिता बालकों को प्रवेश के लिए गुरुकुलों में लाते थे। इससे गुरु और शिष्यों के बीच नया रिश्ता कायम होता था। गुरु-शिष्य के बीच यह संबंध

पूर्णतया निःस्वार्थ होता था। गुरुकुलों में शिष्यों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। वहाँ धनी-निधन, उच्च कुल या निम्न कुल के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता था। सबसे समान व्यवहार किया जाता था। इसलिए शिष्यों में गुरुओं के प्रति आदर का भाव होता था। आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में इन आत्मीय संबंधों का नितान्त अभाव है। अब विद्यार्थी के मन में यह भाव रहता है कि अध्यापक उनके पैसों पर निर्भर हैं इसलिए उनके मन में अध्यापक के प्रति श्रद्धा व आदर का भाव नहीं होता। वहीं अध्यापक की निष्ठा भी छात्रों की शिक्षा में उतनी नहीं होती जितना मतलब उन्हें अपने वेतन से होता है।

गुरुकुलों की शिक्षा-व्यवस्था की विशेषता उनकी आश्रम पद्धति थी जहाँ शिष्यों को अपने आचार्यों और गुरुओं से माता-पिता का-सा स्नेह मिलता था। इसीलिए कहा गया है कि आचार्य शिष्य को एक बार फिर अपने गर्भ में धारण करता है। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसका दूसरा जन्म होता है और वह 'द्विज' कहलाता है। पहले गुरु नगरों के प्रदूषण से दूर प्राकृतिक परिवेश में रम्य, शान्त वातावरण में, पर्वतों की उपत्यका या नदी तट पर शिष्य के अध्ययन की व्यवस्था करते थे। वहाँ विद्यार्थी तपोमय जीवन यापन करते हुए विद्यार्जन करते थे। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् जब विद्यार्थी कार्य क्षेत्र में पदार्पण करते थे तो वे पूरे समाज के लिए प्रेरणा के स्रोत होते थे। उनके सच्चरित्र की आभा दिग्दिगन्त में व्याप्त हो जाती थी।

गुरुदक्षिणा की परम्परा

गुरुकुल से शिक्षा समाप्त करने के बाद छात्रों का दीक्षान्त या समावर्तन संस्कार होता था। जिसमें आचार्य उनके भावी जीवन का मार्गदर्शन करते थे। आचार्यों से विदाई लेते समय

शिष्यों को यह दायित्व होता था कि वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार आचार्य या गुरु को दक्षिणा दें। इसका प्रयोजन यह था कि भविष्य में गुरुकुल में प्रविष्ट होने वाले छात्रों के भोजन, आवास आदि की समुचित व्यवस्था हो सके। इस प्रकार गुरुदक्षिणा देकर वह आचार्य के ऋण से मुक्त होता था। इस संदर्भ में कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जब गुरु या शिष्य गुरु दक्षिणा देते या लेते समय निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन कर जाते थे। राजा रघु के राज्यकाल में आचार्य 'वरतन्तु' का शिष्य कौत्स निर्धन था। उसने अहंकारवश अपने आचार्य से पूछा, "भगवन्! आप को क्या गुरुदक्षिणा दूँ?" आचार्य ने कहा, "वत्स! तुम अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो भी उचित समझो दे सकते हो।" कौत्स ने फिर अभिमानपूर्वक पूछा, आचार्य आप मुझे जितनी भी दक्षिणा देने का आदेश देंगे, उसे मैं पूर्ण करूँगा! शिष्य के अहंकार से क्रुद्ध होकर आचार्य ने उसे चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ देने का आदेश दिया। आचार्य के इस आदेश को सुनकर कौत्स चिन्ता में पड़ गया। वह सोचने लगा कि इतनी स्वर्ण मुद्राओं की व्यवस्था कैसे होगी? अन्ततः उसने राजा रघु से विनयपूर्वक याचना करने का विचार किया और अपनी चिन्ता राजा रघु के समक्ष व्यक्त की। राजा ने राजकोष से उसे स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं और कौत्स ने आचार्य को अभीष्ट गुरुदक्षिणा दी।

इसके विपरीत कभी-कभी गुरु भी अपनी कुत्सित मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। ऐसा उदाहरण महाभारत काल में गुरु द्रोणाचार्य का मिलता है, जब गुरु द्रोण ने भील युवक एकलव्य से गुरु दक्षिणा के रूप में उसके दाएँ हाथ का अँगूठा ही माँग लिया ताकि वह उसके शिष्य अर्जुन से धनुर्विद्या में आगे न निकल सके। यह गुरु दक्षिणा की उच्च

भावना के विरुद्ध था।

अब एक उदाहरण प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द का देखिए। जब उनके शिष्य 'दयानन्द' ने शिक्षा समाप्त होने के बाद गुरुदक्षिणा के रूप में परंपरानुसार अपनी सामर्थ्य के अनुसार लौंगों का थाल भेंट किया तो गुरु विरजानन्द ने कहा, वत्स! मुझे तुमसे इसकी अपेक्षा नहीं है। मुझे तुमसे ऐसी गुरुदक्षिणा चाहिए जो तुम ही मुझे दे सकते हो। दयानन्द ने निवेदन किया, गुरुदेव आपके श्रीमुख से जो भी आदेश होगा उसे मैं शिरोधार्य करूँगा और उसे आजीवन निभाऊँगा। गुरुजी, आज्ञा कीजिए। गुरु विरजानन्द ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा- "वत्स! भारत देश में दीन-हीन जन अनेकविध दुःख पा रहे हैं। जाओ, इनका उद्धार करो। समाज में व्याप्त कुरीतियों का निवारण करो। आर्यजनता की बिगड़ी दशा को सुधारो और उनका उपकार करो। मुझे गुरुदक्षिणा के रूप में यही वचन दो, अन्य किसी सांसारिक पदार्थ की मुझे चाह नहीं।

आज देश के चारित्रिक और नैतिक उत्थान के लिए शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन आदर्शों और गुरुशिष्य के संबंध को मधुर बनाने के लिए आश्रम व्यवस्था को फिर से लागू करने की आवश्यकता है जहाँ शिष्य आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन का उत्थान कर स्वयं को निःस्वार्थ भाव से देश के प्रति समर्पित कर सकें और देश के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह कर सकें।

संपादक



सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-128)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

पूर्व सूत्र में आत्मा के मुख्य स्वरूप को बताने के अनन्तर सूत्रकार निम्नलिखित सूत्र में आत्मा की एक और विशेषता बताते हैं, सूत्र है:-

औदासीन्यं चेति ॥128॥

अर्थ- (च) और (औदासीन्यं) उदासीन होना। (आत्मा का स्वरूप है) (इति) ऐसा सिद्धान्त है।

भावार्थ- औदासीन्य का अभिप्राय अपरिणामी है। आत्मा अप्रसवधर्मी होने से अकर्ता कहा जाता है। जो अकर्ता है वह उदासीन है। आत्मा के संबंध में 'अकर्ता' शब्द का प्रयोग उसके अपरिणामी स्वरूप को बताना है। आत्मा में अपरिणामी स्वरूप अकर्तृव्य है, द्रष्टृत्व का न होना नहीं। इस विचार का उल्लेख 'सांख्य सिद्धान्त' के 'पुरुष' नामक प्रकरण में जीवात्मा के कर्तृव्य प्रसंग में किया गया है। इस सूत्र में आया 'इति' पद प्रकरण की समाप्ति का सूचक है ॥128॥

दी हिबिस्कस,

बिल्डिंग-5, एपार्ट नं.-9बी

सेक्टर-50, गुड़गाँव (हरियाणा) 122009

फोन-0124-4948597

जन्माष्टमी की हार्दिक शुभकामनाएँ

डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी

-महात्मा चैतन्य मुनि

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का जन्म 8 जुलाई 1901 को एक संपन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री आशुतोष जी समस्त भारतीय भाषाओं के पोषक थे। यही संस्कार हमें श्यामा प्रसाद जी के व्यक्तित्व में मिलते हैं। इन्होंने 1921 में प्रेसीडेंसी कॉलेज से प्रथम श्रेणी में बी.ए. किया। 1923 में बंगला भाषा में एम.ए. तथा अगले ही वर्ष बी.एल. की परीक्षा में प्रथम रहे। इसके बाद इंग्लैण्ड में दो वर्ष में वकालत पास कर स्वदेश लौटे। आपकी विलक्षण प्रतिभा के कारण आप को लंदन मैथेमेटिकल सोसाइटी का सदस्य 24 वर्ष की आयु में ही आप कलकत्ता विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य चुने गए। 1938 में कलकत्ता विश्व विद्यालय ने आप को डी. लिट् की और बनारस विश्वविद्यालय ने एल. एल. डी. की उपाधि प्रदान की।

सन् 1922 में आपका विवाह सुधा देवी जी से हुआ और 1933 में उनके निधन के बाद वे देश सेवा में लग गए। 1924 से उन्होंने कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत आरंभ कर दी। 1934 में आपको विश्वविद्यालय का उपकुलपति चुन लिया गया, जहाँ आपने अनेक सुधारात्मक कार्य किए। 1936 में वे विधान सभा के सदस्य चुने गए और सन् 1940 में वे हिन्दू महासभा के प्रधान चुने गए। उन्हें राजनीति में कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का अनुभव आरंभ से ही हो गया था इसलिए देश की अखंडता और सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के लिए उन्होंने कांग्रेस में बड़े से पद को ठुकरा दिया।

कांग्रेस ने जब मुस्लिम तुष्टीकरण नीति के अनुरूप बंगाल में फज़ल-उल-हक़ की कृषक प्रजा पार्टी के साथ मिलकर ग़ैर-मुस्लिमलीगी सरकार बनाने से मना कर दिया तो मुखर्जी 1941 में उसके साथ राष्ट्रवादी सरकार बनाकर वित्तमंत्री बने। उन्हीं दिनों बंगाल में समुद्रतट पर आए भयंकर समुद्री तूफान में अंग्रेजों ने अपनी योजनानुसार राहत कार्य नहीं किया, क्योंकि यहाँ के लोगों ने आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। अतः सरकारी विरोध के बावजूद वे वित्तमंत्री के नाते गाँव-गाँव पहुँचे, जिससे उन्हें मंत्री का पद त्याग देना पड़ा। सन् 1943 में बंगाल में भयंकर अकाल में जब 35 लाख से भी अधिक लोगों की मृत्यु हुई तो वे तन, मन और धन से सेवा कार्य में जुट गए।

देश के विभाजन के बीज कांग्रेस ने पूना अधिवेशन में ही बो दिए थे क्योंकि उसने अधिवेशन में पास किए प्रस्ताव के अन्तिम भाग में यह कहा था कि मातृभूमि के वे भाग, जो हमारे साथ नहीं रहना चाहते उन्हें हम साथ रहने को विवश नहीं करेंगे। देश के विभाजन में कांग्रेस का सारा पंजाब, सारा बंगाल, असम, सिन्ध और सीमाप्रान्त मुस्लिम लीग की झोली में डालने का दृढ़ निश्चय देखकर मुखर्जी ने घोर विरोध किया।

1947 में स्वतंत्र भारत में मुखर्जी ने वाणिज्य मंत्री के रूप में ढाई वर्ष में बंगलौर में हवाई अड्डे का, विशाखापट्टनम में समुद्री जहाज़ का और चितरंजन में रेलवे इंजन का कारखाना लगवाने जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचारों के समय लियाकत अली-नेहरु समझौते में हिन्दुओं की रक्षा का वायदा तो किया

परन्तु बाद में हिन्दुओं पर हुए अत्याचारों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस कारण से मुखर्जी ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। उस समय लोकसभा में उनका वक्तव्य एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। उन्होंने संसद में चेतावनी दी कि यदि नेहरू की यह गलत नीतियाँ जारी रहीं तो विभाजित भारत में फिर से 1947 से पूर्व की भयंकर मुस्लिम समस्या खड़ी हो जाएगी। आज उनकी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रही है। त्यागपत्र देने के बाद 28 अप्रैल 1951 को उन्होंने भारतीय जनसंघ की स्थापना की। स्वतंत्र भारत के पहले चुनाव में जनसंघ के तीन सांसद ही चुने गए। इनमें से एक श्यामा प्रसाद मुखर्जी थे।

इधर जम्मू-कश्मीर में हिन्दुओं पर अत्याचार बढ़ते गए और वहाँ से हिन्दुओं का पलायन शुरू हो गया। शेख अब्दुल्ला राजभवन पर अपना झंडा फहराना चाहते थे, परन्तु जनता के विरोध के कारण वे ऐसा न कर सके। आम जनता की माँग थी कि यहाँ पर भारत का तिरंगा ध्वज ही फहराया जाए। इसी बीच नेहरू ने लोगों की आवाज़ दबाते हुए पंजाब पुलिस और सेना को भेजकर वहाँ शेख को ध्वज फहराने में मदद की। मुखर्जी ने इस विषय में शेख अब्दुल्ला और नेहरू से औपचारिक पत्र व्यवहार भी किया पर उसका दोनों पर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने मुखर्जी का जम्मू और लद्दाख को कश्मीर घाटी से अलग करने का व्यावहारिक सुझाव भी नहीं माना। समस्या को गंभीर होते देख अन्ततः मुखर्जी ने स्वयं जम्मू जाने का निर्णय किया। मुखर्जी वैद्य गुरुदत्त, अटल बिहारी वाजपेयी आदि को साथ लेकर मई 1953 को रेल से जम्मू की यात्रा पर निकल पड़े। मार्ग में

पानीपत, करनाल, अम्बाला, जालन्धर, अमृतसर, पठानकोट आदि स्थानों में लाखों लोगों ने उनके भाषण सुने। रावी नदी के पुल पर पहुँचने पर भारतीय अधिकारियों ने तो उन्हें नहीं रोका परन्तु जम्मू की सीमा में प्रवेश करते ही नदी पुल पर कठुआ के पुलिस अधीक्षक ने वैद्य गुरुदत्त आदि सहित उन्हें बन्दी बना लिया। वास्तव में यह एक षड्यंत्र था, क्योंकि उन दिनों राज्य पर भारतीय सुप्रीमकोर्ट का अधिकार लागू नहीं था। मुखर्जी को अपने विरुद्ध रचे गए षड्यन्त्र की भनक उस समय ही लग गई थी जब पठानकोट में डिप्टी कमिश्नर ने बताया कि उन्हें सरकारी आदेश मिला है कि आपको बिना परमिट के ही आगे जाने दिया जाए, जबकि इसी अधिकारी ने कुछ समय पूर्व जालन्धर में बताया था कि बिना परमिट के वे आगे नहीं जा सकेंगे। इस प्रकार एक सोची-समझी साजिश के तहत नेहरु ने उन्हें शेख अब्दुल्ला के हवाले कर दिया।

इन्हें यहाँ से बन्दी बनाकर श्रीनगर ले जाया गया। जहाँ उनके बेटे तक को भी उनसे मिलने की अनुमति नहीं दी गई। उन्हें प्रातः लम्बी सैर करने का स्वभाव था, परन्तु इसकी भी उन्हें अनुमति नहीं दी गई। फलस्वरूप वे अस्वस्थ रहने लगे तथा उचित उपचार के अभाव में उनकी हालत दिन प्रतिदिन बिगड़ती गई। वे अचानक कैसे बीमार पड़े और उनके उपचार का सही प्रबन्ध क्यों नहीं हो सका - यह सब आज तक भी एक रहस्य तथा अलग से जाँच का विषय है। अन्ततः 23 जून, 1953 को प्रातः ढाई बजे इस नरपुंगव ने अन्तिम साँस ली। अन्तिम संस्कार के लिए इनका पार्थिव शरीर दिल्ली से कलकत्ता ले जाया गया।

संस्कृत भारतीय भाषाओं की गंगा

-स्व. राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा

बच्चों को वैकल्पिक भाषा के रूप में संस्कृत सिखाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि इस भाषा में वे तत्त्व सुरक्षित हैं जो किसी व्यक्ति में संस्कार डालने का काम करते हैं।

बच्चों को संस्कृत सिखाने के लिए, विशेषकर गर्मियों की छुट्टियों में कक्षाएँ लगाई जानी चाहिए और इसे पढ़ाने की शुरुआत कठिन व्याकरण से नहीं होनी चाहिए। संस्कृत भाषा के लिए दूरदर्शन जैसे प्रभावशाली माध्यम का भी उपयोग होना चाहिए। संस्कृत में ज्ञान-विज्ञान और चिंतन का अपार भंडार है, जिसे लोगों तक पहुँचाने के लिए इस भाषा का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।

संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी है और दक्षिण भारत की भाषाओं में भी संस्कृत के बहुत से शब्द मिलते हैं।

संस्कृत वह केन्द्रीय भाषा है, जिसके माध्यम से देश की अन्य भाषाओं को सीखा जा सकता है। बापू ने तो संस्कृत को गंगा नदी की तरह माना था, जिससे कि हमारे देश की अन्य भाषाएँ जीवन और शक्ति प्राप्त करती हैं।

बापू ने 23 मार्च 1940 के हरिजन में लिखा था कि प्रत्येक राष्ट्रवादी को संस्कृत भाषा पढ़नी चाहिए, क्योंकि इससे प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन सरल हो जाता है। यह वह भाषा है, जिसमें हमारे पूर्वजों ने सोचा और लिखा।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी संस्कृत को देश के पूर्वजों की सबसे बड़ी, सबसे ताकतवर और सबसे कीमती धरोहर माना था।

पश्चिमी देशों में आज भी संस्कृत के प्रति गहन श्रद्धा का भाव है और वे इसे कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा मानते हैं।

कुछ पश्चिमी देशों ने तो संस्कृत को अपने यहाँ माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों में शामिल किया है और अमेरिका,

जापान, ब्रिटेन, फ्रांस जैसे विज्ञान की दृष्टि से विकसित देश खुले मन से संस्कृत के महत्व को स्वीकार करते हैं और उस पर अनेक तरह के शोध कार्य कर रहे हैं।

इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि हमारे चिन्तन की सर्वोत्तम निधियाँ संस्कृत भाषा में सुरक्षित हैं। इतिहास और समाजशास्त्री हमारी राष्ट्रीयता की व्याख्या आज चाहे जिस रूप में करें, लेकिन उसकी मूल अवधारणाएँ संस्कृत साहित्य में पहले से ही विद्यमान थीं।

पूरे विश्व को एक कुटुम्ब मानना, सम्पूर्ण मनुष्य जाति को एक जाति मानना और सबके सुख की कामना जैसे विचार संस्कृत भाषा की ही देन हैं। इन्हें ही वर्तमान शब्दावली में राष्ट्रीयता, धर्मनिरपेक्षता और मानव अधिकार कहा जाता है। मैं संस्कृत भाषा को मानव जाति की अत्यन्त प्राचीन, सार्वभौमिक तथा गूढ़ चिन्तन के भार को वहन करने वाली अनुपम भाषा मानता हूँ। आज से सहस्रों साल पहले यह भाषा अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति, क्षमता, भाषागत सौन्दर्य, समृद्ध शब्द-भंडार और ध्वनिगत लालित्य के साथ हमारे सामने थी। इस भाषा के पास ऐसी शक्ति है कि इसमें जहाँ एक ओर कविताएँ और नाटक लिखे गए, वहीं दूसरी ओर चिकित्साशास्त्र, औषध विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र, आध्यात्मिक चिन्तन, नीति शास्त्र, व्याकरण शास्त्र तथा राजनीति विज्ञान जैसे विषयों का भी प्रणयन हुआ। इसलिए सर विलियम जोंस जब रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल को सम्बोधित करते हुए इस भाषा को यूनानी भाषा से अधिक परिपूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध तथा इन दोनों से उत्कृष्ट और संस्कृत भाषा कहते हुए इसकी संरचना पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं तो इस भाषा की इसी अभिव्यक्ति की क्षमता की ओर संकेत करते हैं। पश्चिमी विद्वान् ब्लूमफील्ड संस्कृत भाषा को व्याकरणिक स्वरूप देने वाली पुस्तक 'पाणिनि की अष्टाध्यायी' को मानव-मस्तिष्क की सर्वोत्तम देन कहते हैं।

सार्वदेशिक से साभार

बलिदान पथ के पथिक पं. लेखराम

-प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु

इसे विधाता की विशिष्ट देन ही समझना चाहिए कि पं. लेखराम ने शोध, लेखन, शास्त्रार्थ तथा वैदिक धर्म के प्रचार जैसे बहुआयामी कार्यों को अपनाकर आर्यसमाज की अपूर्व सेवा की। इस बहुश्रुत तथा बहुपठित लेखक का लेखन विविध विषयों पर मिलता है। पं. लेखराम का जन्म वर्तमान पाकिस्तान के जेहलम जिले के ग्राम सैयदपुर में 1858 में हुआ। वे स्वामी श्रद्धानंद से एक वर्ष छोटे थे। उनके पिता तारासिंह साधारण गृहस्थी थे। जमाने की परिपाटी के अनुसार लेखराम ने सामान्य उर्दू-फारसी का ज्ञान प्राप्त किया और पुलिस विभाग में नौकरी कर ली। उन्नति करते-करते वे सार्जेंट के पद पर पहुँच गए। प्रारम्भ में उनका झुकाव अद्वैत वेदान्त की ओर था। वे इस्लाम की ओर भी झुके किन्तु इस बीच उन्हें प्रसिद्ध सुधारक मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रन्थ पढ़ने का अवसर मिला। यहाँ उन्हें यह वाक्य पढ़ने को मिला। “जिसके मन में कोई धर्म सम्बन्धी सन्देह हो और वह दूर न होता हो तो वह जिज्ञासु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर शंका समाधान करें तो उसकी धर्म पिपासा अवश्य शान्त होगी

मुन्शी अलखधारी के इस निर्देश के अनुसार पं. लेखराम 1881 में स्वामी दयानन्द से भेंट करने अजमेर गए और प्रश्नोत्तर द्वारा अपनी धार्मिक शंकाओं का समाधान प्राप्त किया। अपनी राजकीय सेवा के दौरान लेखराम ने पेशावर में आर्यसमाज की स्थापना 1880 में ही कर दी थी। अब उन्होंने इसी नगर में ‘धर्मोपदेश’ नामक एक उर्दू पत्र निकालना प्रारंभ किया। पं. लेखराम में वेद प्रचार की अद्भुत लगन थी। फलतः वे राजकीय सेवा से त्यागपत्र देकर अपना सारा समय धर्मप्रचार में लगाने लगे। वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक विभाग में आ गए और सर्वत्र वैदिकधर्म की दुन्दुभी बजाने

लगे। परिवार पालन जितना वेतन लेकर वे धर्मप्रचार के कार्य में जुट गए।

स्वामी दयानन्द के परलोकवास को अभी अधिक समय नहीं हुआ था। तत्कालीन आर्यपुरुषों ने स्वामीजी का बृहद् और प्रामाणिक जीवनचरित्र लिखाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए पं. लेखराम को उपयुक्त पाया गया। लेखराम महर्षि की जीवनी की आधारभूत सामग्री संकलित करने के लिए देश में सर्वत्र घूमे और विभिन्न स्रोतों से जीवनी से सम्बन्धित तथ्य एकत्र किए। अब वे निश्चिन्त होकर चरित्र-लेखन में प्रवृत्त हुए। अभी यह कार्य चल ही रहा था कि एक आततायी ने उन पर छुरे का बर्बर प्रहार कर 6 मार्च, 1897 को उन्हें हुतात्माओं की श्रेणी में बिठा दिया।

पं. लेखराम ने ईसाइयत और इस्लाम का गहराई से अध्ययन किया था। विशेष रूप से मुसलमानों में नए जन्मे (अहमदिया) (कादियानी) सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर उनका विशेष अधिकार था। उन्होंने इस्लाम की समालोचना में सामान्यतया और अहमदिया मत के बारे में विशेष रूप से आलोचनात्मक साहित्य लिखा। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि पं. लेखराम ने यह लेखन कार्य रक्षात्मक नीति के अन्तर्गत किया, क्योंकि आर्यधर्म पर पहला हमला अहमदिया मत के प्रवर्तक मिर्जा गुलाम अहमद ने किया था। जब मिर्जा की पुस्तक 'सुरमा-ए-चश्म आरिया' में आर्य धर्म पर कटु आक्षेप किए गए तो पं. लेखराम ने 'नुस्खाए खब्त अहमदिया' लिखकर उसका उत्तर दिया। इसी क्रम में 'तकजीब-ए-बुराहीन अहमदिया', 'हुज्जतुल इस्लाम', 'अबताले बशारते अहमदिया' तथा 'आइना-ए-शफाअत इस्लाम' आदि ग्रन्थ लिखे। 'क्रिश्चियन मत समीक्षा' तथा 'आइना-ए-इंजील' उनकी ईसाई मत पर लिखी पुस्तकें हैं।

पं. लेखराम ने स्वाध्याय से हिन्दी तथा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। वैदिक धर्म के प्रचारक के लिए यह आवश्यक था

कि पुरातन वैदिक शास्त्रों के अभिप्राय से स्वयं को अवगत कराने के लिए उसे हिन्दी तथा संस्कृत का समुचित ज्ञान हो। पं. लेखराम ने पौराणिक मत पर भी कलम चलाई। 'पुराण किसने बनाए' उनकी एक लघु पुस्तक है, जिसमें ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि वर्तमान प्रचलित अठारह पुराण न तो व्यास रचित हैं और न इनका रचनाकाल पुराना है। पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि 'Who Wrote the Puranas?' शीर्षक से इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ और मूल पुस्तक के अनेक संस्करण लाहौर, इटावा, मेरठ तथा आगरा से छपे। 'देवी भागवत परीक्षा', 'मूर्तिप्रकाश', आदि पुस्तकें भी पौराणिक मत के खण्डन में लिखी गई हैं। 'सदाकते इल्हाम' में उन्होंने काँग्रेस के संस्थापक मि. ए.ओ.ह्यूम के वेदों की अपौरुषेयता पर किए गए आक्षेपों का उत्तर दिया है। 'नजात की असली तारीफ' में मोक्ष के वास्तविक स्वरूप की विवेचना है तो 'नियोग का मन्तव्य' लिखकर उन्होंने इस पुरानी प्रथा पर किए जाने वाले आक्षेपों का उत्तर देकर मुसलमानों में प्रचलित 'मुताह' की प्रथा से उसे श्रेष्ठ साबित किया है। 'सुबूते तनासुख' में पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि में विभिन्न प्रमाण देकर इस शास्त्रीय विचार का सत्य प्रतिपादित किया है। यह पुस्तक पर्याप्त खोज के पश्चात् लिखी गई थी।

पं. लेखराम की भारत के इतिहास तथा विश्व इतिहास के अध्ययन में गहरी रुचि थी। उनका ऐतिहासिक पर्यवेक्षण विस्तृत, व्यापक तथा प्रमाण पुष्ट था। 'तारीखे दुनिया' (ऐतिहासिक निरीक्षण) में इतिहास-ज्ञान तथा विगत के घटनाक्रम की मार्मिक समीक्षा उन्हें संजीदा इतिहास लेखक की श्रेणी में ला बिठाती है। पं. लेखराम का युग भारतीय नारी जाति के प्रति अन्याय, अत्याचार और शोषण का युग था। तथापि स्वामी दयानन्द द्वारा नारी उत्थान और स्त्री शिक्षा को सर्वोपरि महत्त्व देने के कारण नारियों की दशा के सुधार के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। भारतीय नारी को शिक्षित, सुसंस्कृत तथा

समाज के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को है। पं. लेखराम ने 'नारी शिक्षा' के बारे में दो ग्रंथ लिखे 'कुमारी भूषण' तथा 'स्त्री शिक्षा'। 'रिसाला-ए-नवेद-ए-बेवान' शीर्षक पुस्तक हिन्दू विधवाओं की दयनीय स्थिति का आकलन कर लिखी गई। 'सदाकते ऋग्वेद' में उन्होंने ऋग्वेद पर किए गए सवालियों का उत्तर दिया और 'श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र' लिख कर भगवान कृष्ण के उस जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की जो महाभारत के तथ्यों पर आधारित है तथा पुराणों ने जिसे विकृत कर दिया है। यद्यपि पं. लेखराम का सम्पूर्ण साहित्य उर्दू में है, किन्तु हिन्दी भाषी पाठकों की सुविधा के लिए उसे अनेक बार हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित किया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उनके समग्र उर्दू साहित्य को 'कुलियात आर्य मुसाफिर' के नाम से प्रकाशित किया। इसके सम्पादक स्वयं लाला मुन्शीराम थे। 1903-04 की अवधि में यह ग्रन्थमाला तीन खण्डों में सद्धर्म प्रचारक प्रेस जालन्धर में छपी थी। हिन्दी में लेखराम साहित्य के अनुवादक पं. प्रेमशरण प्रणत, शान्तस्वामी अनुभावानन्द तथा अध्यापक सुखदेवलाल आदि महानुभाव थे। 'कुलियात आर्य मुसाफिर' का हिन्दी अनुवाद दो खण्डों में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने क्रमशः 1963 तथा 1972 में प्रकाशित किया। प्रथम खण्ड के अनुवादक पं. जगतकुमार शास्त्री थे। द्वितीय खण्ड पं. शान्तिप्रकाश द्वारा अनूदित एवं सम्पादित है। पण्डित जी का 'आर्य', 'हिन्दू' और 'नमस्ते की तहकीकात' नामक लघु ग्रन्थ बहुत लोकप्रिय हुआ। पं. रामविलास शर्मा द्वारा हिन्दी में अनूदित इस शोधपूर्ण पुस्तिका को लाहौर, मेरठ, मुरादाबाद आदि स्थानों के प्रकाशकों ने प्रकाशित किया। पंडित जी द्वारा लिखे समस्त ग्रन्थों की संख्या 33 बताई गई है। उनके अधूरे लिखे ऋषि जीवन चरित्र को बाद में लाला मुन्शीराम के आदेश से पं. आत्माराम अमृतसरी ने पूरा किया। इसका संशोधित हिन्दी संस्करण इन पंक्तियों के लेखक ने सम्पादित किया है जो आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली में छपा है।

बलिदान चन्द्रशेखर आजाद

(23.07.1906-27.02.1931)

-दिव्या आर्य

काकोरी खजाना लूट काण्ड के चार अभियुक्तों की फाँसी की घटना ने चन्द्रशेखर आजाद को अत्यन्त व्यथित कर दिया। पुलिस किसी भी तरह आजाद को गिरफ्तार करने के लिए जगह-जगह छापे मारने लगी। काशी, कानपुर और इलाहाबाद में उनकी तलाश की गई। आजाद खुलकर घोषणा कर चुके थे कि वे जिन्दा-हाथ नहीं आएँगे-दुश्मन को मारते हुए प्राणोत्सर्ग करेंगे।

भगतसिंह तथा उनके साथी आजाद का बहुत आदर करते थे। वे इस तेजस्वी क्रान्तिकारी की दृढ़ता, निर्भीकता व दूरदर्शिता पर मोहित थे। समय-समय पर आजाद ही उनका मार्गदर्शन किया करते थे।

भगतसिंह ने आजाद तथा कुन्दनलाल आदि के साथ 1926 में योजना बनाई कि जब काकोरी काण्ड के बन्दी जेल से अदालत ले जाएँ तो रास्ते में उन्हें छोड़ा लिया जाए। किन्तु यह योजना सफल नहीं हो पाई।

असेम्बली में बम फेंकने के आरोप में सरदार भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव को फाँसी का दण्ड सुनाया गया तो आजाद पुनः व्यथित हो उठे। उन्होंने इन तीनों क्रान्तिवीरों को जेल से अदालत ले जाते समय छोड़ने की योजना बनाई किन्तु वह सफल नहीं हो पाई।

आजाद सरकार के भारी प्रयासों के बाद भी पकड़ में नहीं आ रहे थे। सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिए पाँच हजार रुपये ईनाम की घोषणा कर दी। वे कुछ दिन कानपुर रहने के बाद इलाहाबाद चले गये। वहीं रहकर गुप्त रूप से क्रान्तिकारियों को दिशा निर्देश देते रहे।

27 फरवरी 1931 का दिन था। आजाद अपने साथी

सुखदेवराज के साथ इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में बैठे बातचीत में मग्न थे। पुलिस इंस्पेक्टर वीरभद्र तिवारी अचानक सामने सड़क से गुजरा। उसकी निगाह आजाद पर पड़ी तो वह चौंक उठा। उसने तुरन्त खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेंट विश्वेश्वरसिंह एवं डालचन्द को इसकी जानकारी दे दी। उन्होंने खुफिया पुलिस के चीफ सुपरिन्टेन्डेंट मि. नाट बाबर को यह बता दिया। नाट बाबर पुलिस दल के साथ पहुँचा तथा पार्क को घेर लिया। नाट बाबर को सामने देखते ही आजाद ने अपने माउजर से गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। नाट बाबर तथा अन्य पुलिस जनों ने भी गोलियाँ बरसाईं। नाट बाबर व विश्वेश्वरसिंह गोलियों से घायल हो गये। नाट बाबर तो आजाद के रौद्र रूप को देखकर काँप उठा। पेड़ की आड़ लेकर उसने अपनी जान बचाई।

पुलिस ने अल्फ्रेड पार्क को चारों ओर से घेरा हुआ था। चंद्रशेखर आजाद एक वटवृक्ष का सहारा लेकर निरन्तर गोलियाँ चला रहे थे। जब उनके पास गोलियाँ समाप्त हो गईं तो अन्तिम गोली से उन्होंने अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली और अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली कि मुझे जीते जी कोई गिरफ्तार नहीं कर सकेगा।

Quotes by Chandra Shekhar Azad

- ✽ A plane is always safe on the ground but it is not made for that. Always take some meaningful risks in life to achieve great heights.
- ✽ If your blood does not rage, it is water that flows in your vein.
- ✽ I believe in a religion that propagates freedom, equality and brotherhood.
- ✽ Don't see others doing better than you, beat your own records every day because success is a fight between your and yourself.

अटल बिहारी वाजपेयी - एक नज़र

13 दिन की सरकार और सवा घंटे का भाषण

अटल जी का सपना - कमल खिलेगा

विरोधी भी बन जाते थे मुरीद

अटल बिहारी वाजपेयी ने अस्सी के दशक की शुरुआत में बीजेपी के लिए सपना देखा था- कोहरा छटेगा, कमल खिलेगा। उनके इस सपने को असल पंख पूरे दो दशक बाद लगे, जब 1996 में 13 दिनों के लिए अल्पमत सरकार बनी। जानकारों के अनुसार विश्वास मत के दौरान पीएम के रूप में बाजपेयी के लगभग सवा घंटे के भाषणने बीजेपी की किस्मत बदल दी। इसके बाद न सिर्फ बीजेपी सत्ता में आई, बल्कि पार्टी की ऐसी जमीन तैयार हुई जिसके बदौलत वह आज पूर्ण बहुमत के साथ सत्तामें है। किसी भाषण के लिए इतना क्रेज देश में पहली बार देखा गया, जिस तरह लोग भारत-पाक का क्रिक्रेट मैच देखते हैं। भाषण के अंत में उनका बयान कि 'वह राष्ट्रपति को इस्तीफे देने जा रहे हैं' उस वक्त की सबसे पॉपुलर पंच लाइन बन गई। उनके भाषण के बीच का पौज(Pause)और 'यह अच्छी बात नहीं है' कहने की टाइमिंग सुनकर लोग रातों-रात उनकी लोकप्रियता का ग्राफ और ऊपर चला गया।

खासियत-

1. सबको साथ लेकर चलने का राजनीतिक कौशल।
2. कवि हृदय, लेकिन बेबाक बोलने का एप्रोच।
3. एनडीए के पहले न्यू गवर्नेंस के कई मानक बनाए।
4. बड़े विवादों से परहेज, बेदाग छवि।
5. राजनीति की दीवार उनके रिश्तों के आड़े नहीं आई।

पाँच कदम जो देश नहीं भूलेगा

1. किसी दबाव में न आते हुए परमाणु परीक्षण करके वाजपेयी ने देश को परमाणु शक्ति बनाया।
2. कनेक्टिविटी पर जोर। ग्रामीण सड़क और स्वर्णिम चतुर्भुज योजना को आज भी याद किया जाता है।
3. पड़ोसियों से रिश्ते सुधारने के लिए दिल्ली-लाहौर बस सेवा शुरू की। खुद भी बस में बैठकर गए।
4. नदियों को जोड़ने की योजना पर विचार वाजपेयी सरकार में ही शुरू हुआ था।
5. बिना विवाद के 2000 में तीन नए राज्य उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ और झारखंड बनाए।

QUOTES BY SHRI ATAL BIHARI VAJPAYEE

- ✧ My Lord, Never let me climb so high that I am unable to embrace another stranger, Deliver me ever from such arrogance!
- ✧ What is age of death? Not even a couple of mementos.
- ✧ Life is a progression, It's not a matter of a day or two!
- ✧ Why shouldn't I live every moment to the fullest?
- ✧ Why shouldn't I admire the beauty in every fragment?
- ✧ Poverty is multidimensional. It extends beyond money incomes to education, health care, political participation and advancement of one's own culture and social organisation.

*Aao fir se diya jalaaen
Bhari dupahari mein andhiyara
Sooraj parachhai se hara
Antaratam ka neh nichode
Bujhi hui baati sulagaaen,
Aao fir se diya jalaaen!*

बोलो वन्दे मातरम्

राष्ट्रद्रोहियों के वक्ष पर निरन्तर प्रहार करते हुए जिस गीत ने स्वतन्त्रता के मार्ग को प्रशस्त किया, जिस गीत को गाते-गाते क्रान्तिकारी फाँसी के फन्दे को फूलों की सेज के समान चूमकर लटक गए, जिस गीत ने भारतीय राष्ट्रीयता को पुनः प्राणवन्त किया, जिस गीत ने भारत की शस्य श्यामला धरती को वज्र समान स्वर दिया, उस वन्देमातरम् का कोटि-कोटि कण्ठों से पुनः निनाद हो और पुनः भारतीय राष्ट्रीयता का प्राणघोष दिग्-दिगन्त में गूँजे, आज ऐसा ही समय आ पहुँचा है। वन्दे मातरम् पर प्रहार करने वाले न भारत के हैं, न भारतीयता के। यह वही तत्व हैं जिन्होंने मातृभूमि के विभाजन के लिए आवाज उठाई थी और उनकी इस आवाज के साथ जुड़ा था वन्देमातरम् का विरोध। स्वतन्त्रता से पहले मुस्लिम लीग तथा भारत विरोधी मुस्लिम राजनीति का एक प्रमुख हथियार था वन्देमातरम् का विरोध। यह विरोध केवल एक राष्ट्रगीत का नहीं था, यह विरोध न ही उन प्रतीकों को लेकर था जिसका बहाना बनाकर वे विषवमन करते थे। यह विरोध भारत तत्व का था, भारत का था। आश्चर्य की बात है कि खण्डित आजादी मिलने के बाद 72वें साल में भी ऐसे विषपायी भारत की काया में मौजूद हैं और जब उनको मौका लगता है वे सर उठाकर मातृभूमि के विरुद्ध विषवमन कर दुःसाहस दिखाते हैं।

पूर्व कांग्रेस सरकार भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध सबसे बड़ा राजकीय उपकरण बनती जा रही थी। विशेषकर कुछ मन्त्री ऐसा हर कदम उठाने में सन्तोष अनुभव करते थे जिस कदम से राष्ट्रवाद पर प्रहार होता हो। वे सान्ध्यकालीन झोंकों के समान अल्पकालिक रहेंगे और इनका राज भी। इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन इस राज में भी वे जितनी क्षति कर जाएँगे वह बहुत अधिक होगी।

हो सकता है नियति की यही इच्छा हो। लेकिन इनका हर प्रहार और दुर्भावना से भरा प्रत्येक कदम देश में एक ऐसा ज्वार पैदा करेगा जो इस तमाम कलुष और वैमनस्य के कृत्यों को निर्मूल कर जाएगा। अभी प्रतीक्षा और करनी होगी ताकि भारत का देशभक्त समाज आहत होकर इन पर पलटवार कर सके। यह संतोष का विषय है कि सेकुलर तालिबानी नेताओं और उनके सहयोगी जिहादियों की संख्या बहुत कम है। अनेक ऐसे मुस्लिम नेता और सामान्य नागरिक वन्दे मातरम् के घोष को गुँजाते हुए खड़े हैं जो वास्तव में एक बड़े समाज का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। यह मुस्लिम समाज अपनी देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना को दलगत भेदभाव से परे होकर तीव्रता से गुँजाए तो देश का वातावरण ही बदल जाएगा। विडम्बना यह है कि मुट्ठी भर मुल्ला और जिहादी तत्व अपनी आवाज़ मुखर करते हुए सेकुलर मीडिया का सहारा लेकर ऐसा आभास दिलाते हैं मानो वे ही समस्त मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे हों। यह झूठ है। वे केवल उन मुट्ठी भर अराष्ट्रीय तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका भारत और भारतीयता के फलक पर कोई स्थान नहीं हो सकता।

आवश्यकता इस बात की है कि वन्दे मातरम् के विरोध के इस वातावरण में प्रत्येक नागरिक जगह-जगह वन्दे मातरम् का स्वर गुँजाएँ। अपने घरों, कार्यालयों में वन्देमातरम् अंकित करें। अपने मित्रों को अभिवादन स्वरूप वन्दे मातरम् कहें। विभिन्न अन्तःक्षेत्रों से वन्दे मातरम् के गीत और उसकी धुन उतारकर लाखों की संख्या में दुनिया भर में अपने मित्रों को भेजें। और एक बार फिर दिखा दें कि भारत का प्राणघोष दिग्दिगन्त में गुँजता है और किसी के दबाए दबता नहीं है।

पांचजन्य से साभार

मूर्तिपूजा का व्यापार

-महेन्द्र आर्य

मुम्बई शहर में पिछले दिनों गणेश पूजा की धूम-धाम थी। पूजा के दिन के बहुत पहले ही इन मूर्तियों का निर्माण करने वालों की दुकानें सज जाती हैं। इन दुकानों पर लोग अपने घरों, कारखानों और मुहल्लों के लिए मूर्तियों का मोल-भाव करते हैं यानि छोटे गणेश कम दाम में और बड़े गणेश अधिक दाम में उपलब्ध होते हैं। आजकल कुछ समाज सुधारकों ने एक और नया नारा दिया है-आप इको फ्रेंडली (पर्यावरण अनुकूल) गणेश ही लाइए, क्योंकि जब मुम्बई के सभी गणेशों को समुद्र में विसर्जित किया जाता है, तो उससे पर्यावरण का बहुत अधिक ह्रास होता है। उन प्रतिमाओं का भव्य श्रृंगार किया जाता है। बेशुमार पैसे चंदे से इकट्ठे करके इन प्रतिमाओं को सजाया जाता है। बड़े-बड़े पांडाल बनते हैं। उन पंडालों की सजावट भी एक से बढ़कर एक होती है। लोग लाखों पंडालों में घूम-फिर कर गणेश पूजा का आनन्द लेते हैं।

पिछले कई सालों से कई स्पर्धाएँ शुरु होने लगी हैं, जिनमें एक निर्णायक मण्डली चुनाव करती है कि सबसे सुन्दर गणेश कहाँ के हैं। कई अलग-अलग मापदण्डों पर इसका आकलन होता है। बड़े-बड़े पारितोषिक दिए जाते हैं- विजेता गणेश की प्रतिमा को मुम्बई के लाल बाग नाम के इलाके में प्रदर्शित किया जाता है। यह मूर्ति बहुत ही भव्य होती है। पूरा लाल बाग का इलाका एक मेले के रूप में बदल जाता है। बेशुमार चढ़ावा आता है। करोड़ों रुपये खर्च और आमद होती है। इस पूजा के आयोजक गणेशोत्सव के पदाधिकारी अपने गणेश को 2004 वर्ष में 'मुम्बई का राजा' कहते हैं।

2008 में एक सज्जन श्री किशोर शर्मा ने एक वेबसाइट का निर्माण किया, जिसका नाम उसने रखा-मुम्बई का राजा। इस वेबसाइट के माध्यम से उसने एक स्पर्धा शुरु की, जिसमें गणेशोत्सव में जाने वाले लोग अपना मत डाल सकते हैं कि

उन्हें कौन सी गणेश की प्रतिमा और पांडाल पसंद आये। लोगों के मतों के आधार वेबसाइट ये फैसला करती है कि मुम्बई राजा कौन से गणेश हैं। पिछले सालों में कौन से गणेश विजेता या उपविजेता रहे हैं और कौन सिर्फ सांत्वना पुरस्कार प्राप्त कर सके। ये सारे विजेता गणेश आपको सचित्र इस वेबसाइट पर नज़र आयेंगे। आप स्वयं देख सकते हैं- इस वेबसाइट पर -

कुछ दिनों पहले लाल बाग वाली संस्था ने मुम्बई हाईकोर्ट में इस वेबसाइट के विरुद्ध एक याचिका दर्ज कराई। उनका दावा था कि लाल बाग के गणेश को ये पद हमेशा से प्राप्त है। इसलिए इस वेबसाइट को कोई अधिकार नहीं कि वो इसका फैसला करे कि मुम्बई का राजा कौन सा गणेश बने। हाईकोर्ट ने अपना निर्णय सुना दिया कि किशोर शर्मा की वेबसाइट ने किसी के अधिकारों का कोई उल्लंघन नहीं किया है। इस प्रकार हाईकोर्ट ने लाल बाग के गणेश आयोजकों का दावा अस्वीकार कर दिया। अब मुम्बई के किसी भी क्षेत्र के गणेश को ये पदवी जीतने का अधिकार है।

मूर्तिपूजा के पक्षधर लोगों का ये दावा होता है कि साधारण मनुष्य अमूर्त ईश्वर को समझ नहीं पाता, इसलिए उसमें अपनी आस्था नहीं ला पाता, लेकिन जब वो उसी ईश्वर की प्रतिमा को देखता है, तो उसे ईश्वर की भक्ति में खो जाने का भाव प्राप्त होता है। लेकिन क्या वास्तव में ईश्वर की मूर्ति किसी प्रकार की भक्ति का विषय है? मुम्बई में चल रही गणेशोत्सव की प्रतिस्पर्धा और कारोबार से तो यह लगता है कि मूर्तिपूजा एक सम्पूर्ण व्यापार का रूप है। आम आदमी इस पूरे मेले में मनोरंजन को प्राप्त करता है। आयोजक इसके नाम पर अच्छी खासी धनराशि का जुगाड़ कर लेते हैं, और जब इस कारोबार की स्पर्धा और ईर्ष्या बहुत अधिक बढ़ जाती है, तो लोक कोर्ट-कचहरी तक चले जाते हैं। इसे पर्यावरण के हास का कारण अब स्वयं मूर्तिपूजक मानने लगे हैं।

मुम्बई

श्री एपीजे अब्दुल कलाम के भाषण के अंश विदेश में नियम मानने वाले वे कौन हैं?

भारत के लिए मेरे तीन विज़न हैं। 3000 साल के इसके इतिहास में दुनिया भर से लोग आए, उन्होंने हम पर हमला किया, हमारी धरती पर कब्जा किया, हमारे दिमाग पर जीत हासिल की। सिकंदर के बाद यूनानी, तुर्क, मुगल, पुर्तगाली, ब्रिटिश, फ्रेंच, डच सभी आए और हमें लूटा। लेकिन हमने किसी देश के साथ ऐसा नहीं किया। हमने किसी पर कब्जा नहीं किया। हमने किसी की धरती, संस्कृति, इतिहास पर कब्जा नहीं किया और न ही उन पर अपने तौर-तरीके थोपने की कोशिश की। क्यों? क्योंकि हम दूसरों की आजादी की इज्जत करते हैं।

इसलिए मेरा पहला विज़न है आजादी। मुझे लगता है कि भारत को अपना पहला विज़न मिला 1857 में, जब हमने आजादी की लड़ाई शुरू की। इसी आजादी की हमें सुरक्षित रखना होगा और इसे खाद-पानी देना होगा। अगर हम आजाद नहीं होंगे तो कोई भी हमारी इज्जत नहीं करेगा।

मेरा दूसरा विज़न है विकास। आजादी के बाद से हम विकासशील देश हैं। अब वक्त आ गया है कि हम खुद को एक विकसित देश के रूप में देखें और इस ओर काम करें। जीडीपी के मामले में हम दुनिया के टॉप 5 देशों में हैं। हमारी गरीबी कम हो रही है और हमारी उपलब्धियों को दुनिया-भर में सराहा जा रहा है। फिर भी हममें खुद को एक विकसित देश के तौर पर देखने का आत्मविश्वास नहीं है। क्या यह गलत नहीं है?

तीसरा विज़न है कि भारत को दुनिया के सामने खड़े होना चाहिए क्योंकि अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो दुनिया में कोई हमारी इज्जत नहीं करेगा। ताकत सिर्फ ताकत की ही इज्जत करती है। हमें एक सैन्य ताकत के तौर पर ही नहीं, आर्थिक ताकत के रूप में मजबूत होना चाहिए। दोनों को साथ-साथ चलना चाहिए।

मीडिया इतना निगेटिव क्यों है? हम भारतीय अपनी ताकत, अपनी उपलब्धियों पर बात करने में इतना शर्मिंदा क्यों होते हैं? हम महान राष्ट्र हैं। हमारे पास कामयाबी की ढेरों

दिलचस्प कहानियाँ हैं लेकिन हम उन्हें तवज्जो ही नहीं देते।
क्यों?

दूध उत्पादन में हम नंबर एक हैं। रिमोट सेंसिंग सैटलाइट्स में हम नंबर एक हैं। गेहूँ के उत्पादन में हम दूसरे नंबर पर हैं। चावल के उत्पादन में भी हम दूसरे नंबर पर हैं। और भी लाखों उपलब्धियाँ हैं लेकिन मीडिया सिर्फ नाकामी की और हादसों की खबरें दिखाने में ही दिलचस्पी दिखाता है।

एक बार मैं तेल अबीब में था और इस्राइली अखबार पढ़ रहा था। पहले दिन बहुत सारे हमले और बम विस्फोट हुए थे। बहुत सारे लोग मारे गए थे। लेकिन पहले पेज पर एक ऐसे शख्स की तस्वीर थी, जिसने 5 साल में अपनी बंजर भूमि को एक हरा-भरा बगीचा बना दिया था। सुबह हर किसी ने इस सकारात्मक फोटो को देखा। खूनखराबे की खबरें अखबार के अंदर दूसरी खबरों के बीच दफन हो गई थीं। भारत में हम सिर्फ मौत, बीमारी, आतंकवाद, अपराध की खबरें पढ़ते हैं। मेरा सवाल है कि हम इतने निगेटिव क्यों हैं?

दूसरा हम विदेशी चीजों को लेकर इतने आसक्त क्यों हैं? हमें विदेशी टीवी चाहिए, विदेशी शर्ट चाहिए, विदेशी तकनीक चाहिए। हम इस बात को नहीं समझते कि आत्मविश्वास आत्मनिर्भरता से आता है। मैं लेक्चर दे रहा था। 14 साल की लड़की ऑटोग्राफ के लिए मेरे पास आई। मैंने पूछा कि जिंदगी में तुम्हारा मकसद क्या है? वह बोली, 'मैं विकसित भारत में रहना चाहती हूँ।' उस लड़की के लिए हमें और तुम्हें, मिलकर विकसित भारत बनाना होगा और इसके लिए दावा भी करना होगा कि भारत एक विकासशील देश नहीं है, बल्कि बहुत ही विकसित देश है।

अगर आपके पास 10 मिनट हैं तो मेरे कुछ सवालों का जवाब दें:

आप कहते हैं कि सरकार काबिल नहीं है।

आप कहते हैं कि कानून बहुत पुराने हैं।

आप कहते हैं कि म्यूनिसिपैलिटी कचरा नहीं उठाती।

आप कहते हैं कि फोन काम नहीं करते, रेलवे एक मज़ाक है, एयरलाइंस पूरी दुनिया में सबसे खराब हैं।

आप कहते जाते हैं, कहते जाते हैं और कहते जाते हैं।

लेकिन इन सबको सुधारने के लिए आप करते क्या हैं? चलिए, सिंगापुर जा रहे एक शख्स की बात करते हैं। उसे नाम दे देते हैं 'आप'। आप एयरपोर्ट पर उतरते हैं और इंटरनैशनल लेवल का बर्ताव करते हैं। सिंगापुर में आप सड़क पर सिगरेट के बचे हिस्से नहीं फेंक सकते। आप शाम को 5 बजे से रात 8 बजे तक ऑर्चर्ड रोड पर गाड़ी चलाने के लिए 5 डॉलर देते हैं। फिर रेस्तराँ या मॉल में ज्यादा देर रुकने का चार्ज देने के लिए आप फिर से पार्किंग एरिया में आते हैं और अपने स्टेटस का दावा नहीं करते। सिंगापुर में आप कुछ नहीं कहते। कहते हैं क्या? दुबई में आप रमजान के दौरान सरेआम खा नहीं सकते। वॉशिंगटन में आप 55 मील/घंटे की रफ्तार से ज्यादा गाड़ी चलाने की हिम्मत नहीं करते और न ही ट्रैफिक पुलिस से कहते हैं, 'जानता नहीं मैं कौन हूँ? मैं फर्ला-फर्ला का बेटा हूँ। ये 100 रुपये थाम और दफा हो जा।' तोक्यो की सड़कों पर आप पान की पीक नहीं थूकते। ऑस्ट्रेलिया या न्यूजीलैंड में खाली नारियल को कूड़े की तय जगह के अलावा कहीं नहीं फेंकते। हम आप की ही बात कर रहे, वही आप जो दूसरे देशों के नियम और कायदों की इज्जत करते हैं और उनका अनुसरण भी करते हैं। लेकिन अपने देश के नियमों का नहीं। आप वही हैं, जो इंडिया की जमीन को छूते ही सिगरेट और पेपर सड़क पर फेंकने लगते हैं। अगर आप किसी अनजान देश में एक ऐसा नागरिक बनकर रह सकते हैं, जो नियमों का पालन करता है तो अपने देश में क्यों नहीं?

अमेरिका या जापान में अगर किसी का डॉग सड़क पर पॉटी करता है तो उसे साफ करने उसी इंसान का काम है। क्या हमारे देश में लोग ऐसा करते हैं? रेलवे के गंदे टॉयलेट की शिकायत तो हम करते हैं लेकिन क्या उसे इस्तेमाल करने का तरीका जानते हैं? किसी भी बदलाव की बात पर हम कहते हैं कि पूरा सिस्टम बदलने की जरूरत है। फिर इस सिस्टम को कौन बदलेगा? इस सिस्टम को बदलने का जिम्मा सरकार, अधिकारियों, पड़ोसियों का नहीं, बल्कि आपका और हमारा है। हमारे अलावा, कोई और यह काम नहीं कर सकता।

हैदराबाद

ईश्वर के नाम पर हो रहे पाखंड व अंधविश्वास से बच सकते हैं

-आर.डी.अग्रवाल 'प्रेमी'

महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टाइन ईश्वर के बारे में कहते हैं, वह एक्सपेंडिंग युनिवर्स है।' अर्थात् फैलता हुआ विश्व ही ईश्वर है। लेकिन दूसरी ओर मनुष्यों का जो ईश्वर है, वह तो मूर्तियों में और मंदिरों में बंद है। उसे तस्वीरों में जड़ दिया गया है और वह बच्चों के खिलौनों से अधिक नहीं है। पुजारी और तथाकथित भक्त भगवान को खिलाते हैं, श्रृंगार करते हैं, सुलाते हैं, पंखा झलते हैं, भगवान का विवाह करते हैं और उनका जन्मोत्सव मनाते हैं।

असल में अपना ईश्वर हमने अपने ही हाथों से बनाया है। इसलिए हम उसके साथ चाहे जो खिलवाड़ कर लें, वह हमारे स्वार्थों को सहारा देता है। वह हमारे लोभ और द्वेष का पोषण करता है। एक दार्शनिक ने कहा है कि हमारा ईश्वर मर गया है, तभी तो इतने दुराचार, अत्याचार और दुष्कर्म संसार में हो रहे हैं। इसलिए आज आदमी के हालात देख कर लगता नहीं कि ईश्वर कहीं जीवित होगा? ईश्वर शब्द का अर्थ है ऐसी शक्ति जो ऐश्वर्यवान् है, भारतीय ऋषि जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं। और वह ईश्वर न जनमता है, न मरता है। वह मन-बुद्धि से परे का विषय है।

विडंबना यह है कि जो शक्ति, जो ईश्वर मन-बुद्धि से परे है, उसी को हम बुद्धिवादी जन मन-बुद्धि से पकड़ना चाहते हैं। यही कारण है कि अशरीर होने के कारण

लोगों ने ईश्वर की मूर्तियाँ बना दीं। अंधविश्वास और आडंबर के सहारे हम भ्रमजाल में जकड़ गए।

धर्म के ठेकेदारों ने धर्म के नाम पर ईश्वर को प्रांडक्ट व मिथक के रूप में प्रस्तुत करके लोगों को गुमराह किया है। फिल्मों में जब नायक या नायिका पर दुख या संकट का पहाड़ टूट पड़ता है, तब उसे ईश्वर की पूजा करते दिखाते हैं। सुख होता है तो ईश्वर का नामो-निशान नहीं होता। तात्पर्य यह है कि क्या ईश्वर को मात्र दुखों के समय ही याद किया जाना चाहिए? भक्ति भाव के नाम पर मात्र दिखावा व आडंबर होता है। असली ईश्वर अशरीर होते हुए भी हमारे संग सदा मौजूद रहता है, लेकिन उसकी पहचान न होने के कारण हमने अपनी सुविधानुसार ईश्वर बना लिया।

ईश्वर के प्रति प्रेम भी है और भय भी है। इस प्रकार हमारा ईश्वर दोमुँहा हुआ, क्योंकि जहाँ प्रेम है वहाँ भय नहीं होता। ऐसा स्वयंभू ईश्वर जो हमारे ही हृदय में विराजमान है, उस तक हम पहुँच नहीं पाए।

धर्म के पुजारी कहते हैं, ईश्वर से डरो। लेकिन ईश्वर तो प्रेम का प्रतीक है। आनंद देनेवाला है, उससे डरने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। ईश्वर चैतन्य सत्ता है जो अनुभवगम्य है। भगवन श्रीकृष्ण गीता में कह रहे हैं कि इस संपूर्ण सृष्टि में मैं ही हूँ। ऐसे ईश्वर को जानने पर ही हम ईश्वर के नाम पर हो रहे पाखंड व अंधविश्वास से बच सकते हैं।

DISTORTION OF BHARATIYA HISTORY

-Dr. Bhagad Datta

Interest of Europeans in Bharatavarsha (India) and its Ancient Literature :

The battle of Plassey, fought in Samvat 1814, sealed the fate of India. Bengal came under the dominance of the British. In Samvat 1840, William Jones was appointed Chief Justice in the British Settlement of Fort William. He translated into English the celebrated play Sakuntala of the renowned poet Kalidasa (Circa 4th cent.B.V.) in Samvat 1846, and the Code of Manu in Samvat 1851, the year in which he died. After him, his younger associate, Sir Henry Thomas Colebrooke, wrote an article "On the Vedas" in Samvat 1862. In the Vikram year 1875, August Wilhelm von Schlegel was appointed the first Professor of Sanskrit in the Bonn University of Germany. Friedrich Schlegel was his brother. He wrote in 1865 V. a work entitled "Upon the Languages and Wisdom of the Hindus." Both the brothers evinced great love for Sanskrit. Another Sanskritist Hern Wilhelm von Humboldt became the collaborator of August Schlegel whose edition of the Bhagavad-Gita directed his attention to its study. In Samvat 1884 he wrote to a friend saying: "It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show." At that very time Arthur Schopenhauer (1845-1917V.), a great German philosopher, happened to read the Latin translation of the Upanishads (1858-1859V.) done by a French writer Anquetil du Perron (1788-1862 V.), from the Persian translation of prince Dara Shikoh (1722V.), named as Sirre-Akbar-the great secret. He was so impressed by their philosophy that he called 'the production of the highest human wisdom, and considered them to contain 'almost superhuman conceptions.' The study of the Upanishads was a source of great inspiration and means of comfort to his soul, and writing about it he says, "It is the most satisfying and elevating reading (with the exception of the original text) the solace of my death." It is well-known that the book "Oupnekhat" (Upanisad) always lay open on his table and he invariably studied it before retiring to rest. He called the opening up of Sanskrit literature "the greatest gift of our century," and predicted that the Philosophy and knowledge of the Upanisads would become the cherished faith of the West.

Result of that Interest: Such writings attracted the German scholars more and more to the study of Sanskrit, and many of them began

to hold Bharatiya culture in great esteem. Prof. Winternitz has described their reverence and enthusiasm in the following words:

"When Indian literature became first known in the West, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India as something like the cradle of mankind, or at least of human civilization."

This impression was natural and spontaneous. It was based on truth and had no element of bias. The historical facts that were handed down by the sages of Bharatavarsha (India) were based on true and unbroken traditions. Their philosophical doctrines delved deep into the source and mysteries of life and propounded principles of eternal value. When the people of the West came to know of them for the first time many unbigoted scholars were highly impressed by their marvellous accuracy and profound wisdom and being uninfluenced by any considerations of colour or creed they were generous in their acclamations. This enthusiastic applause of the honest people of Christian lands created a flutter in the dovecotes of Jewry and Christian missionaries, who were as ignorant of the real import of their own Scriptures and traditions as those of Bharatavarsha and followed only the dictates of dogmatic Pauline Christianity which had made them intolerant of all other faiths.

The correctness of our conclusion can be judged from the following observation of Heinrich Zimmer:-

"He (Schopenhauer) was the first among the Western people to speak of this in an incomparable manner-in that great cloud-burst of European Christian atmosphere."

How revengeful are dogmatic Christians and Jews on those, who do not hold opinions similar to their own, is amply illustrated by the fate of Robertson Smith (1846-94 A.D.), the author of "The Religion of the Semites", and a professor of Hebrew in the Free Church College, Aberdeen. The punishment he got for the frank and fearless expression of his scientific researches is well recorded by Lewis Spence in the following words:-

"The heterodox character of an encyclopedia article on the Bible led to his prosecution for heresy, of which charge, however, he was acquitted. But a further article upon 'Hebrew Language and Literature' in the Encyclopaedia Britannica (1880) led to his removal from the professoriate of the College."

SANSKRIT - A POWERFUL BINDING FORCE

-Dr. Satyamurti

Language is a powerful medium which brings people together and unites them. But the unfortunate irony of our times is that language is being used as a medium to divide people. Today, particularly in India, different forces are constantly working to divide society on the basis of language, religion, nationality and ethnicity. This can seriously jeopardise our sense of national peace and harmony. Given this backdrop, it is very important to understand and appreciate our linguistic unity. And Sanskrit is the key to this understanding. The linguistic history of Sanskrit reveals that it is the fundamental language of the Indo-European family and has a deep-rooted and intrinsic relationship with various Indian and international languages. Moreover, the vocabulary of Sanskrit and its semantics establishes its close connection with the prime languages of the world. The history of the development of various languages of Asia and Europe reveals an interesting facts. Nearly 4000-5000 years ago, the ancestors of the majority of people in Asia and Europe had been living together for hundreds of years at one place and our forefathers whom we call Arya, used to speak one language. (This is just an imaginary idea). The original language of the Aryans has been termed as Proto Indo-European language-called PIE in short. While studying the family tree of Indo-European languages, the similarity among languages, becomes very visible. It has been established that Sanskrit is more similar to classical language like Greek, Latin, Avestan and Gothic than the modern languages like English, German and French that have been directly derived from them.

Also Sanskrit is the only language among ancient languages, which has undergone minimal change. Its vast repository of literature is intact even today. Moreover, most of the characteristics PIE are still lying in Sanskrit and without knowing Sanskrit, no comparative study of the languages of Indo-European family is possible. In other words, Sanskrit is a binding force for knowing the mutual relationship of different languages and cultures of Asia and Europe. The reason behind it is that the literature of the classical languages like Greek, Latin etc hardly exists today.

As far as India is concerned, barring a few languages like Tamil, Telugu, Kannada and Malayalam of the Dravidian family and Munda and Santhali of Astra-Asiatic family, all Indian languages have originated from Sanskrit.

In connection with the aforesaid languages of the Dravidian family and Astro-Asiatic family, there is a give and take relationship with Sanskrit. Malayalam and Tamil have a huge vocabulary of Sanskrit origin. Sanskrit, too, has become richer by adopting words from Dravidian languages. Given these facts, it becomes evident that the linguistic diversity of India is its power, not its weakness and Sanskrit is the most powerful binding force which ties various languages in an unbreakable thread of unity.

- ✱ Forbes Magazine 1987 declares Sanskrit most suitable for Artificial intelligence and Computers. Sanskrit activates all energy points in body.
- ✱ UNO says that 90% languages are influenced by Sanskrit. 6th and 7th generation super computer would be Sanskrit based. The language is rich in most advance science, contained in their books called Vedas, Upanishads, Puranas, Ramayna etc.
- ✱ Learning of Sanskrit improves brain functioning. It enhances the memory power. James junior school, London has made Sanskrit compulsory. Students of this school are among the toppers year after year. This has followed by some schools in Ireland and Canada also.

अहः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।

रात्रिः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा॥

(यजु.37-21)

ऋषिः - आथर्वणः, देवता-ईश्वरः, छन्दः-अनुष्टुप्
हम प्रार्थना करते हैं कि हमारा दिन जागृत अवस्था और रात्रि सोने में व्यतीत हो। हम उत्तम ज्योति वाले हों। हम ज्ञान से संयुक्त हों और ज्ञान से हमें उत्तम विचार मिलें और हम उत्तम कार्य करें। हमारी रात हमें उत्तम कर्म के विचारों से परिपूर्ण करे। हम सदैव सत्य और उत्तम कार्यों से संयुक्त रहें।

May our day be full of wakeful state and our night in sound sleep.
We may join with knowledge and that light of knowledge makes us to do noble thinking and actions. May our night be full of good thoughts of noble actions. We may always be joining light divine in truth of words and actions. (Yujurveda 37-21)